नईदुनिया

संपादकीय

मध्यप्रदेश के कोचिंग हब बने लाक्षागृह

लखनऊ *के अलीगंज में कोचिंग सेंटर में लगी आग ने चौदह मासूम जिंदगियां लील ली थीं। वह तस्वीरें अभी आंखों से नहीं हटी हैं - धुआं, चीखें, टूटी खिड़कियां और बेसमेंट का बंद रास्ता। यह सब मध्यप्रदेश के भोपाल, इंदौर, जबलपुर, ग्वालियर और उज्जैन जैसे शहरों में भी कभी दोहराया जा सकता है, क्योंकि यहां हजारों कोचिंग सेंटर माचिस की डिब्बी जैसी बहुमंजिला इमारतों में चल रहे हैं। आने-जाने का रास्ता एक, सीढ़ियां संकरी और सुरक्षा के नाम पर केवल औपचारिकताएं। प्रशासन तब जागता है जब आग लग जाती है। तब जांच होती है, तब नोटिस निकलते हैं, लेकिन आग लगने से पहले कोई नहीं जागता। यह लापरवाही अब आदत बन चुकी है और इसकी कीमत हमारे बच्चे चुका रहे हैं।*

मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में एमपी नगर सबसे बड़ा कोचिंग हब है। यहां डेढ़ सौ से अधिक बड़े कोचिंग सेंटर, चार सौ से अधिक मध्यम स्तर के सेंटर और एक हजार से अधिक छोटे ट्यूशन क्लास संचालित हो रहे हैं। रोज हजारों छात्र इन इमारतों में घंटों बैठते हैं। अधिकांश सेंटर बेसमेंट में चल रहे हैं। बेसमेंट यानी धरती के नीचे का कमरा, जहां हवा कम, रोशनी कम और निकलने का रास्ता भी सीमित होता है। आग लगने पर धुआं ऊपर जाएगा और बच्चे नीचे फंस जाएंगे। लखनऊ हादसे में भी यही हुआ था। भोपाल, इंदौर, जबलपुर, ग्वालियर और उज्जैन में भी कमोबेश यही स्थिति है। भवन मानकों में दो निकास द्वार अनिवार्य हैं, लेकिन वास्तविकता में अधिकांश जगह एक ही रास्ता मौजूद है।

अग्निशमन नियम कहते हैं कि हर व्यावसायिक इमारत में फायर एनओसी, फायर एक्सटिंग्विशर, स्प्रिंकलर सिस्टम, आपातकालीन निकास और सुरक्षित विद्युत व्यवस्था अनिवार्य है। लेकिन अधिकांश कोचिंग सेंटरों में यह व्यवस्थाएं केवल कागजों तक सीमित हैं। मॉक ड्रिल औपचारिकता बनकर रह गई है। बच्चों को यह तक नहीं पता कि आपात स्थिति में किस दिशा से बाहर निकलना है। यह स्थिति चिंताजनक ही नहीं, खतरनाक भी है।

प्रशासन की निष्क्रियता सबसे बड़ा सवाल है। हादसों के बाद अभियान चलाए जाते हैं, नोटिस दिए जाते हैं और कुछ दिनों तक कार्रवाई भी होती है, लेकिन फिर सब पहले जैसा हो जाता है। नगर निगम, विकास प्राधिकरण, अग्निशमन विभाग और शिक्षा विभाग के बीच समन्वय का अभाव है। नतीजा यह है कि हजारों बच्चे रोज जोखिम उठाने को मजबूर हैं।

समाधान कठिन नहीं है। सभी कोचिंग सेंटरों का नियमित फायर ऑडिट हो, फायर एनओसी के बिना संचालन पर रोक लगे, बेसमेंट में कोचिंग पर सख्ती से प्रतिबंध लागू किया जाए, हर भवन में दो सुरक्षित निकास मार्ग अनिवार्य हों और नियमित मॉक ड्रिल कराई जाए। अभिभावकों को भी सतर्क रहना होगा। फीस जमा करने से पहले सुरक्षा व्यवस्थाओं की जांच करना उनकी जिम्मेदारी है।

मध्यप्रदेश शिक्षा और प्रतियोगी परीक्षाओं का बड़ा केंद्र है। यहां के विद्यार्थी देशभर में सफलता के झंडे गाड़ रहे हैं। लेकिन यदि उनकी सुरक्षा सुनिश्चित नहीं होगी, तो यह उपलब्धियां भी अर्थहीन हो जाएंगी। प्रशासन को आग लगने के बाद नहीं, उससे पहले जागना होगा। क्योंकि हादसे के बाद केवल राख बचती है, और राख से भविष्य नहीं बनता।

आजकल

धार्मिक भावना और समानता के बीच संतुलन की कसौटी

मध्यप्रदेश में उच्च स्तरीय समिति द्वारा तैयार समान नागरिक संहिता (यूसीसी) के ड्राफ्ट पर शाहर काजी और विधायक आरिफ मसूद के नेतृत्व वाले मुस्लिम पक्ष ने आपत्ति जताई है। उनका तर्क है कि धार्मिक भावनाओं से छेड़छाड़ स्वीकार नहीं होगी। कांग्रेस और समाजवादी पार्टी जैसे विपक्षी दलों ने लिव-इन संबंधों से जुड़े प्रावधानों पर भी सवाल उठाए हैं। उनका कहना है कि इससे सामाजिक संरचना प्रभावित हो सकती है। यह बहस तीन महत्वपूर्ण बिंदुओं को सामने लाती है - सामाजिक न्याय, संवैधानिक मर्यादा और जनस्वीकृति।

संविधान के अनुच्छेद 44 में राज्य को सभी नागरिकों के लिए समान नागरिक संहिता बनाने का निर्देश दिया गया है। गोवा में पहले से समान सिविल कोड लागू है और उत्तराखंड ने भी हाल ही में यूसीसी लागू किया है। इसलिए मध्यप्रदेश का प्रयास संवैधानिक दायरे में है। समिति ने ड्राफ्ट तैयार करते समय धर्मगुरुओं, नागरिकों और राजनीतिक दलों से सुझाव लिए हैं। इससे स्पष्ट है कि सरकार संवाद और परामर्श के माध्यम से आगे बढ़ने का प्रयास कर रही है।

मुस्लिम पक्ष की आपत्ति का आधार धार्मिक प्रथाओं और पहचान की सुरक्षा है। इस्लामिक पर्सनल लॉ में विवाह, तलाक, मेहर और उत्तराधिकार जैसे विषय धार्मिक मान्यताओं से जुड़े हैं। दूसरी ओर, राज्य का तर्क समानता पर आधारित है। यदि कानून धर्म के आधार पर अलग-अलग बने रहेंगे, तो संविधान के अनुच्छेद 14 में वर्णित समानता का सिद्धांत कमजोर पड़ सकता है। इसलिए आवश्यकता टकराव की नहीं, बल्कि अनुच्छेद 25 द्वारा प्रदत्त धार्मिक स्वतंत्रता और अनुच्छेद 44 के उद्देश्य के बीच संतुलन स्थापित करने की है।

लिव-इन संबंधों के पंजीकरण को लेकर भी बहस जारी है। समर्थकों का तर्क है कि इससे महिलाओं को कानूनी सुरक्षा मिलेगी, जबकि विरोधियों का मानना है कि यह व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक मान्यताओं से टकरा सकता है। ऐसे मुद्दों का निर्णय भावनाओं के बजाय तथ्यों और सामाजिक अध्ययनों के आधार पर होना चाहिए।

यूसीसी पर चल रही बहस लोकतांत्रिक प्रक्रिया का हिस्सा है। कानून तभी सफल होगा, जब समाज उसे स्वीकार करेगा। इसलिए आवश्यक है कि सभी पक्षों को विश्वास में लेकर ऐसा संतुलित मॉडल तैयार किया जाए, जो धार्मिक संवेदनशीलता का सम्मान करते हुए संवैधानिक समानता के लक्ष्य को भी पूरा कर सके।

एल्गोरिदम न्यूट्रल नहीं, वह एंगेजमेंट का भूखा है

डिजिटल चौपाल का कोई चौकीदार नहीं

सोशल मीडिया कंपनियों की जवाबदेही प्रतिबंध से नहीं, बल्कि पारदर्शिता और उत्तरदायित्व से तय होनी चाहिए। एल्गोरिदम की कार्यप्रणाली सार्वजनिक हो, बच्चों के लिए सुरक्षित मोड डिफॉल्ट बनाया जाए, आत्महत्या और आत्म-क्षति से जुड़े कंटेंट पर तत्काल रोक लगे, शिकायतों का त्वरित निपटारा हो और गंभीर मामलों में आर्थिक दायित्व भी तय किया जाए। साथ ही स्वतंत्र संस्थाओं से एल्गोरिदम का नियमित सामाजिक प्रभाव आकलन कराया जाना चाहिए।

सोशल मीडिया आज केवल संवाद का माध्यम नहीं रहा, बल्कि वह एक ऐसी डिजिटल चौपाल बन चुका है जहां विचार फैलते हैं, अफवाहें उड़ती हैं, आंदोलन जन्म लेते हैं और कई बार जिंदगियां भी खत्म हो जाती हैं। सबसे बड़ी विडंबना यह है कि इस विशाल डिजिटल चौपाल का कोई चौकीदार नहीं है। मेटा, टिकटॉक, एक्स, इंस्टाग्राम और यूट्यूब जैसी कंपनियां स्वयं को केवल टेक प्लेटफॉर्म बताकर जिम्मेदारी से बच निकलती हैं, जबकि सच्चाई यह है कि वे किसी भी पारंपरिक प्रकाशक से कहीं अधिक प्रभावशाली नैरेटिव नियंत्रक बन चुकी हैं। 18 वर्षीय युवती की मौत के बाद उसके माता-पिता द्वारा मेटा और टिकटॉक पर दायर मुकदमे ने इस बहस को फिर तेज कर दिया है कि सोशल मीडिया कंपनियों की जवाबदेही आखिर कब तय होगी।

यह घटना बताती है कि जब एल्गोरिदम संवेदनशीलता खो देता है तो वह घातक बन सकता है। आरोप है कि युवती ने अवसाद से जुड़ी सामग्री देखनी शुरू की तो प्लेटफॉर्म ने उसे लगातार उसी तरह के वीडियो और पोस्ट दिखाने शुरू कर दिए। एंगेजमेंट बढ़ाने की होड़ में एल्गोरिदम ने मानसिक संकट को और गहरा कर दिया। यह कोई अकेली घटना नहीं है। दुनिया भर में साइबर बुलिंग, फेक न्यूज और खतरनाक ऑनलाइन चैलेंज से जुड़ी अनेक मौतें दर्ज हो चुकी हैं। इसके बावजूद कंपनियों का तर्क यही रहता है कि वे केवल प्लेटफॉर्म हैं और कंटेंट के लिए जिम्मेदार नहीं।

यह दलील अब स्वीकार्य नहीं रह गई है। सोशल मीडिया कंपनियां स्वयं को इंटरमीडियरी बताती हैं, लेकिन उनका एल्गोरिदम यह तय करता है कि कौन-सा कंटेंट किसे और कितनी बार दिखाया जाएगा। डाकिया चिट्ठी पहुंचाता है, लेकिन वह यह तय नहीं करता कि कौन-सी चिट्ठी पहले पहुंचे। यहां एल्गोरिदम यही काम करता है। वह गुस्सा, डर, सनसनी और नफरत पैदा करने वाली सामग्री को अधिक लोगों तक पहुंचाता है क्योंकि उससे एंगेजमेंट और विज्ञापन की कमाई बढ़ती है। इसलिए यह कहना कि प्लेटफॉर्म पूरी तरह न्यूट्रल हैं, वास्तविकता से परे है।

भारत में 50 करोड़ से अधिक सोशल मीडिया उपयोगकर्ता हैं। इस विशाल डिजिटल आबादी के साथ अवसर भी आए हैं और गंभीर खतरे भी। फेक न्यूज से हिंसा, डीपफेक से ब्लैकमेलिंग और खतरनाक ऑनलाइन चुनौतियों से मौत जैसी घटनाएं लगातार सामने आ रही हैं। आईटी नियम, 2021 में शिकायत अधिकारी और आपत्तिजनक सामग्री हटाने का प्रावधान तो है, लेकिन प्रभावी दंड और जवाबदेही का अभाव अब भी बना हुआ है। परिवारों को अक्सर लगता है कि उनका बच्चा मोबाइल पर पढ़ाई कर रहा है, जबकि वह मानसिक रूप से नुकसान पहुंचाने वाली सामग्री के जाल में फंस चुका होता है। दुनिया के कई देशों ने अब आत्मनियमन पर भरोसा छोड़ दिया है। ब्रिटेन के ऑनलाइन सेफ्टी एक्ट और यूरोपीय संघ के डिजिटल सर्विसेज एक्ट में प्लेटफॉर्म से एल्गोरिदम की पारदर्शिता, जोखिम मूल्यांकन और बच्चों की सुरक्षा सुनिश्चित करने की अपेक्षा की गई है। अमेरिका के कई राज्यों में भी सोशल मीडिया कंपनियों पर मुकदमे चल रहे हैं कि उनके प्लेटफॉर्म को लत लगाने वाले तरीके से डिजाइन किया गया है। भारत में प्रस्तावित डिजिटल इंडिया एक्ट से भी ऐसी ही उम्मीदें हैं, लेकिन उसके लागू होने तक और कितनी घटनाएं सामने आएंगी, यह चिंता का विषय है।

सोशल मीडिया कंपनियों की जवाबदेही प्रतिबंध से नहीं, बल्कि पारदर्शिता और उत्तरदायित्व से तय होनी चाहिए। एल्गोरिदम की कार्यप्रणाली सार्वजनिक हो, बच्चों के लिए सुरक्षित मोड डिफॉल्ट बनाया जाए, आत्महत्या और आत्म-क्षति से जुड़े कंटेंट पर तत्काल रोक लगे, शिकायतों का त्वरित निपटारा हो और गंभीर मामलों में आर्थिक दायित्व भी तय किया जाए। साथ ही स्वतंत्र संस्थाओं से एल्गोरिदम का नियमित सामाजिक प्रभाव आकलन कराया जाना चाहिए।

अभिभावकों की जिम्मेदारी भी कम नहीं है, लेकिन जब पूरा डिजिटल तंत्र उपयोगकर्ता का ध्यान अधिक से अधिक समय तक बांधे रखने के लिए बनाया गया हो, तब अकेला परिवार इस चुनौती से नहीं लड़ सकता। सोशल मीडिया का व्यवसाय मॉडल ही उपयोगकर्ता का ध्यान खींचकर विज्ञापन से अधिक कमाई करने पर आधारित है। इसलिए कानून और नैतिक नियमन दोनों का हस्तक्षेप आवश्यक है।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता लोकतंत्र का आधार है, लेकिन उसका अर्थ अराजकता नहीं हो सकता। सोशल मीडिया ने दुनिया को जोड़ा है, पर कई परिवारों को भी तोड़ा है। यदि ये कंपनियां डिजिटल सार्वजनिक मंच संचालित कर रही हैं तो उनकी जिम्मेदारी भी सार्वजनिक होनी चाहिए। 50 करोड़ भारतीय उपयोगकर्ता केवल डेटा नहीं, बल्कि नागरिक हैं। यदि प्लेटफॉर्म सुरक्षा सुनिश्चित नहीं करेंगे तो अदालतें और समाज उनसे जवाब मांगेंगे। तब लाइक और व्यूज नहीं, बल्कि खोई हुई जिंदगियों का हिसाब देना होगा।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

क्यूबा में बदलाव की दस्तक

अर्थव्यवस्था के नए द्वार और वैश्विक दबाव के बीच संतुलन की खोज

सत्तर वर्षों तक अपेक्षाकृत बंद आर्थिक व्यवस्था के साथ आगे बढ़ने वाला क्यूबा अब धीरे-धीरे बदलाव की राह पर बढ़ रहा है। क्रांति के बाद जिस देश ने साम्यवादी मॉडल को अपनी पहचान बनाया था, उसने पहली बार बड़े पैमाने पर निजी क्षेत्र और विदेशी निवेश को औपचारिक मंजूरी दी है। हवाना में पारित मुक्त बाजार सुधारों का व्यापक पैकेज केवल नीतिगत परिवर्तन नहीं, बल्कि उस ऐतिहासिक मोड़ का संकेत है जहां विचारधारा और आर्थिक आवश्यकता के बीच संतुलन खोजने का प्रयास किया जा रहा है। अमेरिका के लंबे आर्थिक प्रतिबंध, वेनेजुएला से तेल आपूर्ति में कमी और कोविड-19 के बाद पर्यटन क्षेत्र में आई गिरावट ने क्यूबा को आर्थिक पुनर्विचार के लिए मजबूर किया है।

नई नीति के तहत अब 100 से अधिक कर्मचारियों वाली निजी कंपनियों को कानूनी मान्यता दी जा सकेगी। अब तक बड़े उद्योगों और उद्यमों पर राज्य का नियंत्रण था, जबकि सीमित स्तर पर ही निजी गतिविधियों की अनुमति थी। निर्माण, खाद्य प्रसंस्करण, सॉफ्टवेयर विकास और नवीकरणीय ऊर्जा जैसे क्षेत्रों में निजी निवेश के अवसर बढ़ाए गए हैं। सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन विदेशी निवेश नीति में किया गया है। पहले विदेशी कंपनियों को केवल राज्य नियंत्रित संयुक्त उपक्रमों के माध्यम से काम करने की अनुमति थी, जबकि अब प्रत्यक्ष स्वामित्व और लाभ अर्जित करने के लिए अधिक स्वतंत्रता दी जा रही है।

इन सुधारों के पीछे आर्थिक चुनौतियां हैं। पिछले कुछ वर्षों में क्यूबा की अर्थव्यवस्था दबाव में रही है। मुद्रास्फीति में तेज वृद्धि, खाद्य सामग्री और दवाओं की कमी तथा ऊर्जा संकट ने आम नागरिकों का जीवन प्रभावित किया है। रोजगार और बेहतर अवसरों की तलाश में बड़ी संख्या में युवा देश छोड़ रहे हैं। ऐसे में सरकार के सामने विकल्प सीमित थे। या तो वह नियंत्रण आधारित मॉडल को और सख्त बनाती या फिर आर्थिक गतिविधियों को बढ़ावा देने के लिए बाजार आधारित सुधारों को अपनाती। क्यूबा ने दूसरा रास्ता चुना है।

सुधारों का एक महत्वपूर्ण पहलू सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों को औपचारिक मान्यता देना है। अब नागरिक अपनी कंपनियां पंजीकृत करा सकेंगे, बैंक ऋण प्राप्त कर सकेंगे और सीमित स्तर पर अंतरराष्ट्रीय व्यापार भी कर सकेंगे। डिजिटल भुगतान व्यवस्था, कर प्रणाली और श्रम कानूनों में भी बदलाव किए जा रहे हैं ताकि निजी उद्यमों के लिए अनुकूल वातावरण तैयार हो सके। पर्यटन क्षेत्र में निजी होटलों और रेस्तराओं को अधिक स्वतंत्रता दिए जाने से स्थानीय उद्यमियों को नए अवसर मिलने की संभावना है।

हालांकि यह निर्णय राजनीतिक रूप से आसान नहीं था। क्यूबा में अब भी एक बड़ा वर्ग ऐसा है जो इन सुधारों को पारंपरिक समाजवादी मॉडल से विचलन के रूप में देखता है। आलोचकों का तर्क है कि बाजार आधारित सुधारों से आर्थिक असमानता बढ़ सकती है और राज्य द्वारा संचालित स्वास्थ्य तथा शिक्षा जैसी सार्वजनिक सेवाओं पर दबाव पड़ सकता है। दूसरी ओर सरकार का कहना है कि उत्पादन, निवेश और रोजगार बढ़ाए बिना इन सेवाओं को लंबे समय तक बनाए रखना संभव नहीं होगा। इसलिए सीमित निजीकरण को व्यवस्था की आवश्यकता के रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। अमेरिकी प्रतिबंध अब भी क्यूबा की आर्थिक प्रगति में बड़ी बाधा बने हुए हैं। अंतरराष्ट्रीय वित्तीय संस्थानों तक सीमित पहुंच और डॉलर आधारित लेनदेन पर प्रतिबंध विदेशी निवेश को प्रभावित करते हैं। इसके बावजूद स्पेन, कनाडा, चीन और मैक्सिको जैसे देशों की कंपनियां क्यूबा में ऊर्जा, पर्यटन और कृषि क्षेत्रों में सक्रिय हैं। नई नीतियों से इन निवेशकों को अधिक स्पष्टता और सुरक्षा मिलने की उम्मीद है।

आम नागरिकों के लिए यह परिवर्तन अवसर और चुनौती दोनों लेकर आया है। एक ओर नए रोजगार, उद्यमिता और आय के अवसर बढ़ सकते हैं, वहीं दूसरी ओर प्रतिस्पर्धा और बाजार आधारित व्यवस्था के कारण नई सामाजिक चुनौतियां भी सामने आ सकती हैं। इसलिए सुधारों के साथ प्रभावी नियमन और सामाजिक सुरक्षा तंत्र भी आवश्यक होगा। क्यूबा का यह प्रयोग वैश्विक स्तर पर भी महत्वपूर्ण माना जा रहा है। कई विशेषज्ञ इसकी तुलना वियतनाम और चीन के शुरुआती आर्थिक सुधारों से कर रहे हैं, जहां राज्य ने राजनीतिक नियंत्रण बनाए रखते हुए आर्थिक उदारीकरण को अपनाया था। आने वाले वर्षों में यह स्पष्ट होगा कि क्यूबा का यह मॉडल कितनी सफलता प्राप्त करता है। फिलहाल इतना निश्चित है कि देश ने आर्थिक यथार्थ को स्वीकार करते हुए परिवर्तन की दिशा में कदम बढ़ाया है। यदि पारदर्शिता, सुशासन और आम नागरिकों की भागीदारी सुनिश्चित की गई, तो ये सुधार क्यूबा को नई आर्थिक संभावनाओं की ओर ले जा सकते हैं।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)

बंधुआ मजदूरी की जंजीर में जकड़ा आम आदमी

भारत को आजाद हुए दशकों बीत गए, लेकिन देश के कई हिस्सों में इंसान आज भी कर्ज और मजबूरी की जंजीरों में जकड़ा हुआ है। सरकार ने बंधुआ मजदूरी उन्मूलन अधिनियम, 1976 बनाया, संविधान के अनुच्छेद 23 के तहत बेगार और जबरन श्रम पर प्रतिबंध लगाया, विजिलेंस कमेटियां गठित कीं और पुनर्वास योजनाएं शुरू कीं। इसके बावजूद बंधुआ मजदूरी पूरी तरह समाप्त नहीं हो सकी है। कड़े निर्देश और कानून मौजूद हैं, लेकिन उनका प्रभाव जमीन पर सीमित दिखाई देता है।

बंधुआ मजदूरी की सबसे बड़ी वजह गरीबी और कर्ज का जाल है। किसान, खेतिहर मजदूर और आदिवासी क्षेत्रों के लोग छोटी-छोटी जरूरतों के लिए साहूकारों से उधार लेते हैं। ब्याज इतना अधिक होता है कि मूलधन कभी खत्म नहीं होता। कर्ज चुकाने के बदले मजदूरी शुरू होती है और यह सिलसिला वर्षों तक चलता रहता है। कई बार एक पीढ़ी का कर्ज दूसरी पीढ़ी तक पहुंच जाता है। कानून इसे अपराध मानता है, लेकिन ग्रामीण समाज में इसे मजबूरी समझकर स्वीकार कर लिया जाता है।

ईंट भट्टों, पत्थर खदानों, चावल मिलों और अन्य असंगठित क्षेत्रों में बंधुआ मजदूरी अक्सर छिपकर संचालित होती है। मजदूरों को उनके अधिकारों की जानकारी नहीं होती। कई मामलों में उन्हें बाहर जाने, नौकरी छोड़ने या स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने की छूट तक नहीं मिलती। शिकायत करने का तंत्र मौजूद है, लेकिन जानकारी के अभाव में उसका उपयोग नहीं हो पाता। जिला स्तर की निगरानी समितियां भी कई बार अपेक्षित सक्रियता नहीं दिखातीं।

बंधुआ मजदूरी की पहचान करना भी आसान नहीं है। कानून के अनुसार यदि कोई व्यक्ति कर्ज या दबाव के कारण काम छोड़ने के लिए स्वतंत्र नहीं है, तो वह बंधुआ मजदूर माना जाएगा। लेकिन व्यवहार में अधिकारियों द्वारा दस्तावेज, गवाह और प्रमाण मांगे जाते हैं। दूसरी ओर, शोषण करने वाले लोग लिखित रिकॉर्ड नहीं रखते। परिणामस्वरूप पीड़ित व्यक्ति अपने ही शोषण को साबित करने में असफल रहता है। कई मामलों में पुलिस और संबंधित विभागों की उदासीनता भी समस्या को और गंभीर बना देती है। पुनर्वास व्यवस्था भी कमजोर कड़ी साबित हुई है।

मुक्ति के बाद आर्थिक सहायता, कौशल प्रशिक्षण और वैकल्पिक रोजगार का प्रावधान है, लेकिन इन योजनाओं का लाभ समय पर नहीं मिल पाता। आजीविका के विकल्प न होने के कारण कई मुक्त मजदूर दोबारा उसी व्यवस्था में लौट जाते हैं जिससे उन्हें बाहर निकाला गया था। यह स्थिति बताती है कि केवल मुक्ति नहीं, बल्कि स्थायी पुनर्वास भी उतना ही आवश्यक है। इस समस्या का समाधान नियमित निगरानी, त्वरित कार्रवाई और व्यापक जागरूकता में है। पंचायत स्तर तक अभियान चलाए जाएं, श्रमिकों को उनके अधिकार बताए जाएं और शिकायतों पर तुरंत कार्रवाई हो। साथ ही, सुलभ ऋण व्यवस्था और रोजगार के अवसर बढ़ाकर साहूकारों पर निर्भरता कम की जाए। बंधुआ मजदूरी केवल कानूनी नहीं, बल्कि मानवीय और सामाजिक चुनौती है। एक स्वतंत्र देश में किसी भी व्यक्ति का श्रम और जीवन बंधन में नहीं होना चाहिए। कागज पर लिखे निर्देश तभी सार्थक होंगे, जब उनका प्रभाव धरातल पर दिखाई देगा। असली सफलता तब होगी, जब हर मजदूर भय, कर्ज और शोषण से मुक्त होकर सम्मानपूर्वक जीवन जी सकेगा।

मानव तस्करी और अंग व्यापार : मानवता के विरुद्ध अपराध

मानव तस्करी और मानव अंगों का अवैध व्यापार आज समाज के सामने सबसे गंभीर अपराधों में से एक है। यह केवल कानून का उल्लंघन नहीं, बल्कि मानव गरिमा और मानवाधिकारों पर सीधा हमला है। जब नवजात बच्चों की खरीद-फरोख्त होती है, जब आर्थिक रूप से कमजोर लोगों को अंग बेचने के लिए मजबूर किया जाता है, या जब संगठित गिरोह मानव शरीर को मुनाफे का साधन बना लेते हैं, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि समस्या केवल अपराध की नहीं, बल्कि व्यवस्था और नैतिकता दोनों की है।

हाल के वर्षों में विभिन्न राज्यों से मानव तस्करी और अवैध अंग प्रत्यारोपण से जुड़े मामलों का खुलासा हुआ है। जांच एजेंसियों ने पाया है कि ऐसे अपराध अक्सर संगठित नेटवर्क के माध्यम से संचालित होते हैं, जिनमें दलाल, फर्जी दस्तावेज तैयार करने वाले लोग और कई बार चिकित्सा व्यवस्था से जुड़े व्यक्ति भी शामिल पाए जाते हैं। गरीब और असहाय परिवार इन गिरोहों का सबसे आसान निशाना बनते हैं। आर्थिक संकट, अशिक्षा और सामाजिक असुरक्षा का लाभ उठाकर उन्हें शोषण के जाल में फंसा लिया जाता है।

सबसे बड़ी चिंता यह है कि ऐसे मामलों में न्यायिक प्रक्रिया अक्सर लंबी और जटिल हो जाती है। जांच, सबूतों के सत्यापन और अदालती प्रक्रियाओं में वर्षों लग जाते हैं। इस दौरान कई गवाह मुकर जाते हैं, साक्ष्य कमजोर पड़ जाते हैं और अपराधी कानून की पकड़ से बच निकलते हैं।

इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि मानव तस्करी और अवैध अंग व्यापार से जुड़े मामलों की सुनवाई के लिए विशेष फास्ट ट्रैक अदालतों की व्यवस्था हो, ताकि पीड़ितों को समय पर न्याय मिल सके और अपराधियों को शीघ्र दंड मिले।

इस समस्या की जड़ें भी समझना आवश्यक है। गरीबी, बेरोजगारी और शिक्षा का अभाव ऐसे अपराधों के लिए उपजाऊ जमीन तैयार करते हैं। जब कोई परिवार आर्थिक संकट में घिरा होता है, तब वह धोखाधड़ी और लालच का शिकार बनने की अधिक संभावना रखता है। दूसरी ओर, यदि अस्पतालों और चिकित्सा संस्थानों में निगरानी व्यवस्था कमजोर हो, तो अवैध प्रत्यारोपण जैसे अपराधों को बढ़ावा मिलता है। इसलिए केवल कानून कठोर बनाना पर्याप्त नहीं होगा, बल्कि निगरानी तंत्र को भी मजबूत करना होगा।

नीतिगत स्तर पर कई सुधारों की आवश्यकता है। मानव तस्करी और अवैध अंग व्यापार से जुड़े मामलों की जांच के लिए विशेषीकृत एजेंसियों को अधिक अधिकार और संसाधन दिए जाने चाहिए। अपराध से अर्जित संपत्ति की जब्ती का प्रावधान प्रभावी ढंग से लागू किया जाना चाहिए, ताकि अपराधियों को आर्थिक लाभ न मिल सके। साथ ही राज्यों के बीच बेहतर समन्वय और डिजिटल निगरानी प्रणाली विकसित करने की भी आवश्यकता है।

समाज की भूमिका भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। पंचायतों, स्थानीय निकायों, विद्यालयों और सामाजिक संगठनों को जागरूकता अभियान चलाने चाहिए। लोगों को यह जानकारी होना आवश्यक है कि संदिग्ध गतिविधियों की सूचना तत्काल प्रशासन को दी जाए। बच्चों और महिलाओं की सुरक्षा के प्रति सामाजिक सतर्कता बढ़ाना भी उतना ही आवश्यक है जितना कानून का भय।

अंग प्रत्यारोपण के क्षेत्र में पारदर्शिता भी एक महत्वपूर्ण उपाय है। मरणोपरांत अंगदान को प्रोत्साहित करने, पंजीकरण प्रक्रिया को सरल बनाने और प्रतीक्षा सूची को अधिक पारदर्शी बनाने से अवैध बाजार की गुंजाइश कम की जा सकती है। जब वैध व्यवस्था मजबूत होगी, तब अवैध नेटवर्क के लिए जगह स्वत: सीमित होती जाएगी।

मानव तस्करी और अंग व्यापार को किसी भी सभ्य समाज में स्वीकार नहीं किया जा सकता। यह अपराध केवल व्यक्तियों के विरुद्ध नहीं, बल्कि मानवता के विरुद्ध है। इसलिए सरकार, न्यायपालिका, चिकित्सा संस्थानों और समाज को मिलकर ऐसी व्यवस्था बनानी होगी, जिसमें अपराधियों के लिए बच निकलना असंभव हो और पीड़ितों को त्वरित न्याय मिल सके। मानव जीवन का मूल्य किसी भी आर्थिक लाभ से कहीं अधिक है और उसकी रक्षा करना राज्य तथा समाज दोनों की सर्वोच्च जिम्मेदारी है।

(नईदुनिया संपादकीय डेस्क)